स्त्री धन

नीलम भारती

शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास, पुरात्तत्व,
एवं संस्कृति विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

भारत में प्राचीनकाल से ही स्त्री धन की अवधारणा मिलती है । सर हेनी मेन का मत है कि हिन्दुओं विवाहित स्त्रियों वह सुरक्षित सम्पत्ति, जिनका पति उपहार नहीं कर सकता था, स्त्री धन के नाम से प्रसिद्ध था । मनु के अनुसार जो विवाह के समय अग्नि के सम्मुख कन्या को दिया जाता है वह स्त्री धन कहलता है ।[1] विवेच्ययुगीन भाष्यकार विज्ञानेश्वर ने स्त्रीधन को कम से कम छः प्रकार का बताया है– पिता, माता, भ्राता और पति द्वारा दिया हुआ । अग्नि की सन्निधि में विवाह के समय कन्यादान के साथ प्राप्त तथा अधिवेदन के निमित्त मिला हुआ धन यही नहीं विवाह होने के पश्चात प्रीतिपूर्वक सास–ससुर आदि से पादवन्दनादि प्रथा में स्त्री को जो प्राप्त होता था, वह भी स्त्रीधन था।[2] सम्पत्ति, विभाजन के समय पत्नी या माता का पुत्र के समान अंश, भाईयों अंश के चतुर्थाश आदि को भी अपर्शक ने स्त्रीधन के अंतर्गत उल्लिखित किया है ।[3] वस्तुतः पति द्वारा पत्नी को दी गई तथा उत्तराधिकार में उसे मिली हुई चल सम्पत्ति भी स्त्रीधन के अंतर्गत थी ।[4] स्त्रीधन के अंतर्गत अधिकांशतः स्त्री के मूल्यवान वस्त्राभूषण होते थे, जिनका वह स्वयं उपयोग करती थी । पति के मरने के पश्चात नारी को उसके स्त्रीधन से वंचित न करने का मनु द्वारा निर्देश दिया गया है ।[5] कात्यायन ने यह मत व्यक्त किया है कि स्त्री अपने स्त्रीधन के साथ अचल सम्पत्ति को भी बंधक रख सकती अथवा बेच सकती है । जीमूतवाहन ने दायभाग में कात्यायन का मत उद्धत किया है, जिसके अनुसार 'सौदायिक' (स्नेहियों से प्राप्त धन) पर स्त्रियों का स्वातन्त्रय अभिप्सित है, क्योंकि यह इसलिए मिलता है कि वे संकट की स्थिति में अपना भरण–पोषण कर सके और नृशंस (कठोर या दयनीय) अवस्था को न प्राप्त हो । सौदायिक स्त्रीधन के ग्रहण अथवा दान में पति–पुत्र, पिता, भाई किसी को अधिकार नहीं था ।[6] धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रीधन के उपयोग पर प्रायः प्रतिबन्ध लगाया तथा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही पति द्वारा उसके उपयोग की बात कही । जैसे–दुमिक्ष धर्मकार्य, व्याधि अथवा जेल जाने की परिस्थिति । नारद ने स्त्री को केवल चल सम्पत्ति ही बेचने की अनुमति दी है ।[7] इसे अन्य अनेक मध्यकालीन भाष्यकारों ने भी स्वीकार किया है ।[8] स्त्री का स्नेह–वात्सल्य साधारणतः पुत्री के प्रति ही अधिक होता है इसलिए शास्त्रकारों ने स्त्रीधन की अधिकारिणी पुत्री को ही बताया है । पराशर ने भी इसका समर्थन किया है, किन्तु मिताछरा कि अनुसार दोषपूर्ण और अवगुण युक्त कन्याओं को स्त्रीधन न देने विधान भी शास्त्रकारों ने किया है । विवेच्यकाल में विज्ञानेश्वर सम्भवतः स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों के सबसे प्रबल समर्थक थे । उन्होंने स्त्रीधन की इतनी विस्तृत व्याख्या की है–[9] कि उसमें सम्पत्ति प्राप्त करने के सभी प्रकारों के उत्तराधिकार क्रय, बटवारा आदि का समावेश हो जाता है ।

अतः कहा जा सकता है कि स्त्री के विपत्ति और दुर्दिनकाल में जब उसके समस्त सम्बन्धी और सहायक उसे निराश्रित छोड़ देते हैं ऐसे समय में उसके जीवन का संचालन उसके

स्त्रीधन से ही होता था । इसी बात को ध्यान में रखकर पहले की अपेक्षा विवेच्यकालीन लेखकों ने अधिक तर्कशील दृष्टि अपनाते हुए स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों को प्रति उदारता दिखलाई ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक अवस्था में स्त्री के पास व्यक्तिगत रूप से वही धन था जो विभिन्न अवसरों पर आभूषण तथा मूल्यवान वस्त्रों के रूप में दिया जाता था । प्रारम्भिक सूत्र साहित्य द्वारा भी इसी का समर्थन होता है ।[10] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार स्त्रीधन का तात्पर्य ऐसे धन से है जो पिता, भ्राता एवं माता द्वारा मिला हो एवं विवाहादि अवसरों पर आभूषणों के रूप प्राप्त हुआ हो । वौधयन धर्मसूत्र के मतानुसार पुत्री माता से आभूषणादि प्राप्त करती है । किन्तु विवेच्यकालीन लेखकों ने स्त्रीधन के क्षेत्र को पहले से अधिक विस्तृत किया । कात्यायन और व्यास के विचारानुसार माता, पिता, भ्राता, मामा आदि सम्बन्धी स्त्री को अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त कुछ भी स्त्रीधन के रूप में प्रदान कर सकते हैं ।[11] वी0पी0 काणे[12] तथा हरिदत्त वेदालंकार[13] ने प्रारम्भ में विवाह के अवसर पर कन्या को दिये जाने वाले दहेज की वस्तुओं वस्त्राभूषण तथा घर की अन्य सामाग्री को स्त्रीधन का मूल माना है । कौटिल्य[14] ने स्त्रीधन को दो रूपों में स्वीकार किया था । वृत्ति स्त्रीधन (अर्थात् जो स्त्री के नाम से सम्पत्ति है) तथा उसके आभूषण इसी क्रम में मनु[15] ने भी स्त्रीधन को छः प्रकार का स्वीकारा है ।

ज्ञात है कि नारद द्वारा वार्णित स्त्रीधन मनु से साम्य रखता है[16] परन्तु मनु ने जहाँ 'प्रीति कर्मणि' का उल्लेख किया है वहाँ नारद द्वारा 'भ्रर्तृदाय' बताया गया है । मनु के प्रीतिकर्म का क्षेत्र व्यापक है, जिसके अंतर्गत वधु के किसी भी सम्बन्धी द्वारा 'स्नेहवश' देयधन आता है, जिसे नारद ने केवल पति तक ही संकीर्ण करके इसके क्षेत्र को समुचित कर दिया है । याज्ञवल्कय[17] में अधिवैदनिक, बन्धुदत्त तथा शुल्क को जोड़कर मनु द्वारा छः स्त्रीधन की संख्या के स्थान पर नौ कर दिया है । अधिवेदनिक वह धन है जो पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर प्रथम पत्नी को दिया जाता है वधु के पितृकुल सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त धन 'बन्धुदत्त' कहलाता है । कन्या को विवाह में प्राप्त करने के लिए पति–कुल द्वारा दी जाने वाली धनराशि 'शुल्क' कहलाती है । मिताक्षरा तथा उसके अनुयायी ग्रन्थों में 'अधिवेदनिका' 'च' शब्द प्राप्त हातो है किन्तु दायभाग, देवल तथा उससे सम्बन्ध अन्य ग्रन्थों में 'अधिवेदनिकम चौब' शब्द दृष्टिगत होता है । मिताक्षरा में स्त्रीधन के अन्तर्गत कुछ ऐसे धन को भी सम्मिलित किया गया है, जिसे सामान्यतः स्त्रीधन के अन्तर्गत नहीं माना जाता था । स्त्रीधन के सन्दर्भ में उल्लेखनीय योगदान कात्यायन द्वारा प्रदान किया गया है । इसके अनुसार स्त्रीधन छः प्रकार के होता है । दायभाग एव चिन्तामणि क`मत से सौहायिक स्त्रीधन के अन्तर्गत अचल सम्पत्ति को त्यागकर शेष सम्पूर्ण सम्पत्ति सम्मिलित है, जिसे पत्नी पति से प्राप्त करती है [18] दायभाग के अनुसार सौदायिक वस्तुतः सुदाय शब्द से निर्मित है जिसका तात्पर्य संबन्धियों द्वारा प्रेमपूर्वक उपाहारादि प्राप्त करने से है ।

इन कथनों के आधार पर पी0वी0 काणे का विचार है कि स्त्रीधन में प्रारम्भ में कुछ प्रकार की सम्पत्ति ही थी किन्तु कात्यायन के समय तक स्त्रीधन की संख्या में सभी प्रकार की सम्पत्ति सम्मिलित हो गयी, जिसे कोई स्त्री कुमारी अवस्था में या विवाहित होते समय अथवा विवाहोपरान्त अपने पितृकुल अथवा पतिकुल से (पति द्वारा प्रदत्त अचल सम्पत्ति त्यागकर) प्राप्त करती है । इन्होंने वह धन जिले स्त्री विवाह के पश्चात् स्वयं श्रम द्वारा अर्जित करती है अथवा बाहरी लोगों से प्राप्त करती है अथवा बाहरी लोगों से प्राप्त करती है । स्त्रीधन के अन्तर्गत नहीं माना है । [19]

सक्षिप्ततः स्मृतियों तथा उनकी टीकाओं के अध्ययन से यह सुस्पष्ट होता है कि स्त्रीधन एक ऐसा धन है जिसके अन्तर्गत प्रारम्भिक काल में मात्र छः प्रकर की सम्पत्ति मानी गयी । कात्यायन ने भी मुख्यरूपेण इन्हीं प्रकारों का ही उल्लेख किया, परन्तु इनके द्वारा विवाहोपरान्त श्रम अथवा अपरिचित द्वारा प्राप्त धन को स्त्रीधन के अन्तर्गत नही मान्य किया गया । विवेच्ययुग में स्त्रीधन की परिभाषा और स्पष्ट रूप से ज्ञात होने लगती है । वायभाग के अनुसार गृह कर्मकार एवं शिल्पी द्वारा जो धन उत्कोय (धूस) के रूप में स्त्री को, इस प्रयोजन से दिये जाते हैं कि कन्या उन्हें कार्य देने के लिए पति को प्रेरित कर, उसे शुल्क कहा गया है । कन्या को जो धन इसलिए दिये जाते है कि वह पति के घर प्रसन्नता पूर्वक जाये, उसे भी शुल्क कहा गया है ।[20] स्मृतिचेद्रिका एवं व्यवहार मपूरब के अनुसार जो उपहाराभूषण पति द्वारा पत्नी को दिये जाते है, उन्हें भी शुल्क कह सकते । व्यवहार निर्णय में शुल्क को दो रूपों में वर्णन मिलता है ।

अधिकांशतः उपाहारादि जो स्त्री को विभिन्न अवसरों पर प्राप्त होते थे, उन्हें ही स्त्रीधन कहा जाता था । सम्प्रति जो वैवाहिक पद्धतियों प्रचलित है, उनमें भी स्त्रीधन का प्रायः यह रूप दृष्टव्य है । आज कन्या को दहेज के रूप में अपार सम्पत्ति प्राप्त होती है, किन्तु उस सम्पत्ति पर कन्या को कोई विशिष्ट अधिकार नहीं होता । मात्र आभूषणों पर ही उसका अधिकार होता है । उसी प्रकार प्राचीन काल में भी आभूषणों अथवा आभूषणों के लिए प्राप्त ध नही प्रायः स्त्री का अधिकार होता था । स्त्रीधन के अन्तर्गत 'शुल्क' शब्द की व्याख्या कतिपय व्याख्याकारों द्वारा 'शुल्क' शब्द की व्याख्या कतिपय व्याख्याकारों द्वारा 'कन्या के मूल' के रूप में की गई, किन्तु यह मान्य नहीं प्रतीत होता क्योंकि क्रीता कन्या को कभी भी स्मृतिकारों ने प्रशस्त नहीं माना । वस्तुतः यहाँ शुल्क का तात्पर्य उस सम्पत्ति से प्रतीत होता है जो कन्या को पति द्वारा आभूषण बनवाने के लिए प्राप्त होता होगा या उसके श्रृंगार व्यय के लिए प्राप्त होता रहा होगा स्मृतिकारों ने मूलतः स्त्रीधन की व्यवस्था स्त्रियों की आर्थिक सुरक्षा के लिए की थी न कि दहेज के रूप में। वास्तव में स्त्री अधिकांशतः साम्पत्तिक उत्तराधिकार से वंचित थी तथा पूर्णतः पुरूषों पर आधारित थी । ऐसी स्थिति में आपत्तिकाल में स्त्री का उचित प्रकार से जीवन निर्वाह हो सके, इस उद्देश्य से ही स्त्रियों हेतु स्त्रीधन की व्यवस्था मनीषियों द्वारा दी गयी थी ।

संक्षिप्तः गुप्तोत्तर युग में स्त्रीधन के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत विकसित एवं उदार दृष्टिकोण हमारे समक्ष उपस्थित होता है । प्रारम्भ में सम्भवतः स्त्रीधन कन्या के मूल्य के रूप में रहा होगा, यह कदाचित प्रागैतिहासिक युग से ही भारत में प्रचलित था । विवेच्यकाल में मिताक्षरा द्वारा प्रतिपदित नियम इस सम्बन्ध में सर्वाधिक उदार दिखाई देता है । स्त्रीधन की सीमा, स्वामित्व एवं उत्तराधिकार के सम्बन्ध में यद्यपि दायभाग एवं मिताक्षरा में बहुत अधिक अन्तर नहीं है ।

सन्दर्भ

1. मनु0, 9 पृ0 274, 18, पृ0 37

2. मनु0, 9, 194 अध्यग्नध्यावाहनिक..... स्मृतम् ।

3. अपर्राक, पृ0 751

4. मिताक्षरा, याज्ञ0 2, 143 आधशब्देन..... .....मान्दादिनि

5. मनु0 3, 52

6. दायभाग, सौदायिके सदा..... स्थावरेणचि ।

7. नारद, व्यवहार मयूरव में उद्धत, पृ0 97

8. स्मृतिचन्द्रिका, पृ0 656

9. दे0नी0 पृ0 656

10. आप0 द्य0 206, 14, 9, बौ0 ध0

11. पितृ या तृपतिभ्रातृ ज्ञातिभिः स्त्रीधन स्त्रियैः ।

यथाशाक्या द्विसाहस्राद दायतव्यम् स्थावराद्धते ।।

कात्या0 (स्मृतिच0 2, 281 पर) परा0 मा 03, पृ0 548

द्विसाहस्रः परोदायः स्त्रिदेयों धनस्य च, यच्च भर्त्रा धनं दत्तं सा यथा कामपश्नुयात् 11 व्यास0 (स्मृति0 2, पृ0 281)

12. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 2 द्वितीय संस्करण पृ0 937–38

13. हिन्दू परिवार मीमांसा (द्वितीय संस्करणद्ध पृ0 451–52

वि0 ध0 सू0, 17, 18

पितृमातृसुत भ्रातदत्तमध्यग्न्युपागत माधिवेदनिकम् ।।

14. अर्थशास्त्र 3, 2

वृत्तिरावध्य व स्त्रीधनम् ।

परद्विसहस्त्रास्थाप्या वृत्तिः ।।

15. मनु0 9, 194

अध्यग्नयध्यावहनिंक दत्तं प्रीतिकर्माणि ।

भात–मातृ–पितृ षडविधं स्त्रीधन स्मृतम् ।।

16. नारद 4,14

अध्यग्नध्यावहिनिंक मर्तृदायस्तथेव च मातृदत्तं ।

पितृभ्यांच षडविध स्त्रीधन स्मृतम् ।।

17. याज्ञ0, 2, 143–44 ।

पितृमातुभ्रातृदत्तामध्यग्न्युपागतम् ।

आधिवेदनिकाद्यम् च स्त्रीधन परिकीर्तितम् ।।

बन्धदत्त तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च ।।

18. व्यवहारनिर्णय, पृ0 468

19. दायभाग 4, 1, 13, पृष्ट 468

20. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ट 940

दायभाग 4, 3, 20–21 पृ0 93

Copyright © 2016, Neelam Bharti. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.